योग : स्वरूप और साधना : एक विवेचन

☐ साध्वी मुक्तिप्रभा, एम. ए, पी-एच. डी.

जीवन व्यवहार की अनेक प्रवृत्तियों के बीच रहने वाला साधक अनेक लोगों से संपर्क जोड़ता है और तोड़ता भी है। सम्पर्क-साधना ही हमारी विचारधाराओं को प्रभावित करती है कभी संयोग के रूप में, कभी वियोग के रूप में। जैसे-जैसे विचारों का प्रभाव चित्त पर स्थायी होता है वैसे-वैसे मोह का एक धुंधलासा बादल आच्छादित होता है। इस मोह-पटल से परे होने के लिए, सघन विचारधारा के अन्धकार से बचने के लिए कोई उपाय, कोई योजना साधक के जीवन में नितान्त आवश्यक है और वह है—"स्वरूपानुसंधान रूप योग।"

मनुष्य अपने ही गज से जब अपने आपको नापता है, अपने स्वभाव की तुला से अपने आपको तोलता है और अपने ही कार्यों से जब अपने आपको परखता है तब निश्चय ही वह अज्ञानी अपने आपको ज्ञानी, विवेकी और अनुभवी समझता है।

पता नहीं वह कौन से कल्पनालोक में घूमता है, कौन से मानसचित्र को अंकित करता है, कितनी गलत धारणाएँ अबाध गति से धारण करता है और अपने आपका ही द्वेषी, वैरी और घातक बनता है। अपनी योग्यता से अधिक अपने आपको समझने वालों, अपने दुर्गुणों को भी गुण समझने वालों को यह चुनौती दी जा रही है।

इस मोह का ह्रास करने के लिए ही यौगिक आराधना का आलम्बन रूप हरी झंडी ज्ञानी भगवन्तों ने बतायी है।

आचार्य हरिभद्र सूरि ने योगविंशिका नामक ग्रन्थ में "मुक्खेण जोयणाओ जोगो" अर्थात् जिन यौगिक आराधनाओं के आलंबन से आत्मा की विशुद्धि और उसका मोक्ष के साथ योग होता है, उन सर्व आलंबनों को योग कहा है।

इसी बात को स्पष्ट करने के लिए आचार्यश्री ने अपने योगदृष्टि-समुच्चय में बताया है कि—

एक एव तु मार्गोऽपि तेषां शमपरायणः।
अवस्थाभेदभेदेऽपि जलधौ तीरमार्गवत्॥

प्रारम्भावस्था में विविध दर्शनानुयायी अनेक रूप से उपासना करते हैं। किसी भी प्रकार की उपासना हमें विकल्पों से मुक्त बनाती है। स्वात्मा में संलीनता लाती है और मोक्षमार्ग में स्थिर करती है। तो जो योगालंबन उपयुक्त है, साधक उसे स्वीकार करे।

इन्द्रियविजय एक मार्ग

जैनसाधक इन्द्रियविजय की साधना में प्राथमिक भूमिका में विषय से दूर रहने का अभ्यास करता है। कल्पना कीजिए आज किसी का मन टी. वी. में वीडियो केसेट देखने के लिए लालायित है, पर उस समय संकल्प के द्वारा उस ओर दौड़ती हुई हमारी विकृत आंखों पर जो नियंत्रण किया जाता है कि 'आज मैं किसी भी हालत में वीडियो नहीं देखूंगा' और वह साधक मन, वचन आदि योगों को बहिर्मुखता से मोड़कर अन्तर्मुखता की ओर ले जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'इच्छानिरोधो योगः'—इच्छाओं का निरोध करना एक बहुत बड़ी साधना है। जैसे किसी साधक को स्वादिष्ट भोजन या ठंडा-ठंडा आइसक्रीम खाने की इच्छा हुयी। सामने पड़े हुये पेय या स्वादयुक्त पदार्थों से मन को हटाकर जिह्वा का संवरण करना स्वादविजय है। इसी प्रकार शब्द से कर्ण को, सुगंधित द्रव्यों से नाक को और कोमल स्पर्श से शरीर की इच्छा पर संयम रखना इन्द्रियविजय है। यह एक मार्ग है।

कषायविजय एक मार्ग

कषाय अर्थात् कलुषित वृत्तियों का प्रभाव। वह चार प्रकार का होता है—क्रोध, मान, माया और लोभ।

क्रोधविजय – वैर का जन्म क्रोध से होता है। बहुत दिनों तक टिका क्रोध वैर और द्वेष बन जाता है। मान लो किसी ने आपको गाली दी और आपने उसको एक चांटा लगा दिया तो आपने क्रोध किया। किन्तु गाली देनेवाला गाली देकर भाग गया और कई दिनों के बाद आपको मिला। मिलते ही आपने बिना गाली सुने ही मार दिया तो यह वैर है। क्रोध के उदय को रोकना, फलहीन बना देना, आये हुए क्रोध को द्रष्टा बनकर देखते रखना इत्यादि क्रोधविजय है।

मानविजय—मान के उदय का निरोध, आये हुए अहं का त्याग, सत्ता, संपत्ति, अधिकार का त्याग इत्यादि मानविजय है।

मायाविजय—सरलता का अभ्यास, ठगवृत्ति का त्याग, बताना कुछ और देना कुछ का व्यवसाय बंद करना इत्यादि मायाविजय है।

लोभविजय—लोभ को जीतने का मार्ग है—जो पदार्थ उपलब्ध हैं उन्हीं में संतोष का अनुभव करना, मन की लालसा का निरोध करना, संग्रहवृत्ति का त्याग, यह लोभविजय है।

योगविजय एक मार्ग

योग अर्थात् मन, वचन, काया की प्रवृत्ति।

मनोजय—मन शुभाशुभ विचारों की विकृति और प्रकृति से भरा हुआ है। मन निरंतर विकल्पों का जाल बुनता है और मकड़ी की तरह उसी में फँसता है। इसलिए मन पर विजय पाने के लिए साधक को अकुशल मन का निरोध, अस्थिर मन का स्थिरीकरण और शुभ मन को भी शुद्धता की ओर ले जाना आवश्यक है।

मन की विकृति शरीर में भी विकृति लाती है। श्वास की गति को भी अधिक या मंद कर देती है, रक्त की गति भी हाई या लो रूप धारण कर लेती है, हृदय को धड़कन भी बदल जाती है। ऐसे विकृत मन की गति को बदलना है। शब्द की गति से भी सूक्ष्म, बिजली, पानी, वायु की गति से भी अधिक गतिमान् यह मन है। बिजली एक सैकिण्ड में एक लाख, छियासी हजार मील जाती है किन्तु मन की गति का कोई मापतोल नहीं, वह तो अमाप है। अतः साधक हो इस अमाप मन की गति को माप सकता है। वह उसकी गति को रोकता नहीं, बदलता है। योगाभ्यास से उसे वश में किया जा सकता है। जैसे मदारी सर्प जैसे प्राणी को भी अपने वश में कर सकता है, मदोन्मत्त हाथी को महावत अंकुशित कर

आसमस्थ तन
आत्मस्थ मन
तब हो सके
आश्वस्त जन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सकता है, प्रेम से शत्रु भी मित्र बन जाता है, वैसे ही योगाभ्यास से चंचल मन स्थिर हो जाता है।

वचनजय—वाणी प्रशस्त और अप्रशस्त दोनों प्रकार की होती है। अप्रशस्त अर्थात् हिंसाकारी, क्रोधकारी, मर्मभेदी, कष्ट पहुँचाने वाली वाणी का साधक परित्याग करे। जिस वचन से किसी की आत्महत्या हो या मारणान्तिक उपसर्ग हो उसका त्याग करके मौन आराधना करना इत्यादि वचनविजय है।

योगाभ्यास से वाचाल साधक व्यर्थ की बातों का परित्याग कर मौन साधना में संलग्न होता है।

कायजय—कायजय अर्थात् कायोत्सर्ग—काया की अप्रशस्त प्रवृत्ति का निरोध, कायिक स्थिरता का अभ्यास इत्यादि कायजय है।

आवश्यक सूत्र का पाठ है **ताव कायं ठाणेणं मोणेणं झाणेणं अप्पाणं वोसिरामि** अर्थात् (काया से) एक आसन पर स्थिर होकर (वचन से) मौनपूर्वक ध्यानस्थ होकर मैं अपनी काया का परित्याग करता हूँ अर्थात्—शरीर से पर होकर आत्मा में लीन होता हूँ। साधक व्यर्थ का समय न खोते हुए जब भी समय मिले कायोत्सर्ग में स्थित रहे।

आहारविजय एक मार्ग

आहार हितकर, परिमित और शुद्ध होना आवश्यक है। अति आहार से मनुष्य दुखी होता है। रूप, बल और शरीर क्षीण होते हैं। प्रमाद, निद्रा और आलस्य बढ़ जाते हैं। अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं। अतः आहार पर विजय करने पर ही साधक अपनी साधना में स्थिर रह सकता है।

निद्राविजय एक मार्ग

साधना के क्षेत्र में निद्रा बाधक तत्त्व है। अति निद्रा से समय का व्यय होता है, बेचैनी बढती है और आयु घटती है। आहारविजय से ही निद्राविजय का होना संभव है। अतः साधक निद्रा से पर होकर ही साधना में संलग्न हो सकता है।

कामविजय एक मार्ग

काम मन का सबसे भयंकर विकार है। काम से मन चंचल होता है, बुद्धि मलिन होती है और शरीर क्षीण होता है। अतः साधक ब्रह्मचर्य की कठोर साधना से इस विकार से मुक्त रहे।

भयविजय एक मार्ग

अनेक विकारों में भय भी एक विकार है। भय से मन कायर होता है, आत्मविश्वास नष्ट होता है और मानसिक रोगों का संवर्धन होता है, अतः साधक के लिए अभय बनना ही उचित मार्ग है।

संशयजय एक मार्ग

जिस साधक को अपनी साधना में ही संशय होता है वह कभी भी सफल नहीं हो पाता। संशयशील मानव हर समय यही ध्यान रखता है कि कोई उसकी आलोचना करता है, उसके विरुद्ध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

षड्यंत्र रच रहा है। अतः साधक आत्मश्रद्धा और आत्मविश्वास बढ़ावे तो ही वह संशय के विकारों से मुक्त हो सकता है।

इस प्रकार के जय से योगी अपने आपमें रही हुयी—विकृतियों से पर हो सकता है। जिस प्रकार शरीर के रोग से शरीर दुर्बल होता है, उसी प्रकार मन के विकार मन को दुर्बल करते हैं। साधक को इन विकारों से पर होने के लिए योगाभ्यास का सहारा लेना ही चाहिए।

आज का युग साधकों से अपेक्षा रखता है कि अब हम सामाजिक आडम्बरों में, पदार्थों के प्रलोभन में तथा सत्ता, अधिकार और सन्मान में जो घसीट के ले जाने वाली प्रवृत्तियाँ हैं उनसे पर होकर शान्त चित्त से योगाभ्यास में अपने आपको केन्द्रित करें। ऐसा करने पर ही क्रमशः साधक भोगविलास, ऐश्वर्य, पद प्रतिष्ठा, कीर्ति इत्यादि बहिर्मुखता से अन्तर्मुख होने का अलभ्य लाभ प्राप्त करेगा।

□□

आसमस्थ तन
आत्मस्थ मन
तब हो सके
आश्वस्त जन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org